कृष्णा सोबती के उपन्यासों में स्त्री संवेदना

डॉ दलीप कुमार
प्राचार्य
प्रण्याराज डिग्री कॉलेज बज्जू

सार
कृष्णा सोबती, भारतीय साहित्य की मशहूर लेखिका, अपने उपन्यासों में स्त्री संवेदना को अद्वितीय दृष्टिकोण से प्रस्तुत करती हैं। उनके उपन्यासों में स्त्री के अंतर्निहित भावनाओं, संघर्षों, और आत्म-खोज को महत्वपूर्ण विचारी तरीके से परिप्रेक्ष्य देती हैं। उनकी रचनाओं में स्त्रीजीवन की विभिन्न पहलुओं को उजागर करते हुए, वे समाज में परंपरागत भूमिकाओं के प्रति प्रश्न उठाती हैं। उनके उपन्यासों के किरदारों में आत्मा-स्वाधीनता की चिंता, प्यार की आकांक्षा, और स्वतंत्रता की प्रवृत्ति को महत्वपूर्ण स्थान मिलता है। वे अपने शैली में सरलता और गहराई का संयोजन करती हैं जिससे स्त्री के भावनात्मक सफर को अद्वितीय रूप में प्रस्तुत करती हैं। कृष्णा सोबती के उपन्यास स्त्री के अंतर्निहित विचारों और भावनाओं की मानवीयता को समझने में मदद करते हैं और समाज में जेंडर और भूमिका के मुद्दों पर विचार करने की प्रेरणा प्रदान करते हैं।

कीवर्ड: कृष्णा सोबती के उपन्यास, स्त्री संवेदना

परिचय

कृष्णा सोबती ने अपनी पहली रचना लामा 1950 में लिखी हशमत नाम पर भी इन्होने रचना की है - "हमा- हशमत ", तथा बुनियाद दरावाहिक में भी कार्य किया | ज़िन्दगीनामा उपन्यास पर इन्हे साहित्य अकादमी पुरस्कार भी मिला है, शिरोमनी पुरस्कार 1981 में, और हिन्दी अकादमी पुरस्कार 1982 में |

भूमिका

-आधुनिक युग में स्त्री साहित्य में जिस भाषा को स्वीकार है, वह स्त्री की नहीं बल्कि पुरुष वर्ग की विशिष्ट भाषा है, अतीत की जाँच ड़ताल की तुलना में वर्तमान संघर्ष के लिए ज्यादा महत्वपूर्ण है। परम्परा में एसा कुछ लुभावना नजर नहीं आता । यदि कुछ अच्छ दिखता है तो वह भविष्य में दिखता है तमाम कठिनाइयों के बावजूद आज की स्त्री की दृष्टि में उसका भविष्य जितना सुखद और रोचक है उतना उसका अतीत कभी नहीं रहा, वर्तमान के आधार पर ही कहा जा सकता है कि हम स्त्रियों का अतीत सुखद नहीं था ? सृष्टि के आरम्भ से ही सृष्टि के निर्माण और संचालन में नारी की महत्वपूर्ण भूमिका रही है | मानव जाति के सभ्यता एंव संस्कृति के विकास का मूल आधार नारी को ही माना जाता है । नर और नारी के दो मूलभूत तत्व हैं | दोनों के सहयोग और समन्वय से ही सृष्टि की रचना होती है । सृष्टि रचना मे पूरूष की तुलना में नारी का योगदान अधिक है । प्रजनन अथवा वंश वृद्धि प्राणियों के महत्वपूर्ण कार्य है । गर्भ धारण से लेकर संतान का जन्म एंव उसके पालन - पोषण का कार्य स्त्री ही करती है । इसलिए नारी को सृष्टि की आधार कहा गया है । समस्त विश्व की वीरा करती मूल उद्भव मे शक्ति का प्रतिक है । इतनी सारी महानताओं के बाद भी नारी को मात्र समाज में वह स्थान नही मिला जिसकी वह अधिकारी है । सम्पूर्ण समाज व्यवस्था का निर्माण पुरुषों द्वारा होने के कारण नारी की भूमिका दूसरे दर्जे की ही रही है । वैदिक काल में नारियों की स्थिति की चर्चा करते हुए आशारानी व्यारो ने लिखा है- "धन की देवी लव्मी " ,"ज्ञान की देवी सरस्वती "," शक्ति की देवी दुर्गा " से क्या अर्थ निकलता है ? अवश्य ही प्रचीन भारतीय नारी इन सब शक्तियों की अधिकारिणी रही है |

उपन्यासों में स्त्री :

मित्रो मरजानी :
स्त्री की देह: 'मित्रो मरजानी 'से 'पार्च्छ ' तक का सफ़र
कथा नायिका : सुमित्रंवती (मित्रो)
इस कथा में मध्य वर्गी परिवार का चित्रण करते हुए मित्रो के भावनवो पर प्रकाश डाला है, यह इस कहानी की अभूतपूर्व पात्र है साथ ही साथ यह कोई मनोविश्लेषणात्मक या असामान्य पात्र नहीं है क्योंकि किसी स्त्री का जीवन आइना असान नहीं जब वह कास रूप में अपने सभी भावनाओ को समाने रखना ट । जो लेखिका में इस उपन्यास में शामिल किया है ।
कथा मध्य वर्ग के व्यापारी परिवार की मंझली बहू सुमित्रवंती की है, जिसे मित्रो बुलाते हैं। मध्य वर्गीय / संयुक्त पारिवारिक परिवेश में मित्रो बड़ी बेबाक, निडर और सक्षम स्त्री को चरितार्थ करती है जो अपनी देह की माँग को किसी अपराध बोध से जोड़कर नहीं देखती । वह यह मानने को कतई तैयार नहीं कि जो देह प्रेम करने का माध्यम है उसे सिर्फ़ घर, परिवार और कर्तव्यों से ही जोड़कर देखा जाए। जब मित्रो कहती है - "मित्रो रानी ! चिंता फिकर तेरे बैरियों को! जिस घड़ने वाले ने तुझे घड़ दुनिया का सुख लूटने को भेजा है, वही जहाँ का वली तेरी फिकर भी करेगा !" तो हमारे सामने एक बेबाक और ईमानदार औरत आ खड़ी होती है जो अपनी देह को देह भी मानती है पर इसे अंतिम नहीं मानती। जब वह कहती है - "जिठानी, तुम्हारे देवर सा बगलोल कोई दूजा न होगा । न सुख दुख, न प्रीति प्यार न जलन प्यास.. बस आए दिन धौल धप्पा...लानत मलामत !" तो उसके शब्दों में कोमल नारी मन भी उतना ही मुखरित है जितना उसके अन्य संवादों में उसकी देह की उपस्थिति, और इस उपस्थिति को नकारने से इनकार!
मित्रो कोई विदुषी नहीं, ज़मीन और मिट्टी से जुड़ी एक साधारण औरत, जो अपनी ईमानदारी और सहजता की वजह से उस पूरे माहौल में अलग ही दिख पड़ती है और अपने परिवेश में एक ख़तरे की तरह देखी और महसूस की जाती है। वह अपने आस-पास बिखरे चमचमाते जीवन के प्रति भी उतनी ही आकर्षित है जितना वह अपने पति की कोमल सानिध्य के लिए तरसती है। अपनी मांसलता और देह को पूरी सहजता से जीने वाली नारी चरित्र इसके पहले हिन्दी साहित्य में नहीं दिखी थी।
साठ के दशक में स्त्री शुचिता और इससे जुड़े दोगलेपन पर जो स्त्री संशय करती, नैतिकता और समाज के बंद दरवाज़ों पर दस्तक देती दिखती है, २००० तक आते आते वह स्त्री महेश मांजरेकर द्वारा निर्देशित फ़िल्म 'अस्तित्व' की अदिति पंडित में और मुखर नज़र आती है। जब वह अपने पति श्रीकांत पंडित से पूछती है - " बताओ श्री क्या करूँ मैं अपनी उन इच्छाओं का जो मेरी देह में उठती हैं? तुम्हारी देह में उठने वाली इच्छाएँ इच्छाएँ और वही इच्छाएँ मेरे लिए पाप ?"
कैसी विडंबना है, स्त्री शुचिता से जुड़े जो सवाल भारतीय समाज में १९६६ में मित्रो मरजानी द्वारा पूछे गए, २००० की फ़िल्म अस्तित्व तक भारतीय स्त्री उन्हीं सवालों से जूझती दिखती है और आज २०१६ की फ़िल्म 'पार्ड' की अगर बात करें तो भी मूलभूत मुद्दे वही हैं।
पर औरत संतान सिर्फ़ अपने लिए नहीं चाह सकती, अपनी संतान के साथ पिता का नाम जुड़ा होना भी उतना ही ज़रूरी है । ऐसा नहीं कि औरतों को इस साजिश का भान नहीं है। इसको एक पात्र के माध्यम से लीना यादव ने रखा भी है, जब जानकी के लिए वह कहती है कि "भगवान करें कि माँ बनने की चींटी ना लगे इसमें ।" या संतान की चाह में रोज़ अपमानित होने वाली लज्जो का आखिरकार कहना कि "वह स्वयं के लिए संतान चाहती है।" इस तरह से वह अपने शरीर पर अपने अधिकार की घोषणा करती है । और जब अपने संतान सुख के लिए लज्जो गैर मर्द के साथ शारीरिक संबंध बनाती है तब उस दृश्य में लज्जो के माध्यम से प्रेम से स्पर्श का सुख, सम्मान की चाहत, ममता की प्यास का पर्दे पर फिल्मांकन विचलित कर देने जैसा है । लीक से हटकर राधिका आप्टे ने उन तमाम स्त्रियों की वेदना को इस दृश्य के माध्यम से व्यक्त किया है। उत्तर वैदिक युग की मंत्रोच्चार करती हुई विदुषी स्त्री कैसे वर्तमान की इस दशा में पहुँची यह पूरे समाज के पतन की महागाथा है। सवाल यह उठता है, क्या हमारा समाज मानसिक रूप से इतना कुन्द है, कि स्त्री शुचिता अब भी सबसे बड़ा प्रश्न है? कहने को मेरे पास और भी कई बातें हो सकती हैं, पर सिर्फ़ एक सवाल मैं यहाँ छोड़ जाना चाहती हूँ ।
सूरजमुखी अन्धेरे के :
कथा नायिका : रतिका (रत्ती)
"अगर व्यक्तिगत संपत्ति की अवधारणा नहीं होती क्या तब भी नारी शुचिता भारतीय मानस में इतनी ही
यह उपन्यास तीन भागों/ सर्गों में विभाजित है - पुल, सुरंगे और आकाश तीनों सर्ग रत्ती के जीवन में आयी घटनाओं को कभी फ्लेश बैक तो कभी वर्तमान में दिखाते हैं / "पुल" सर्ग में रत्ती के जीवन में अकेलापन और कुंठा दिखती है. वह खुद को अपने दोस्त रीमा - और केशी के भरे पुरे परिवार में अकेला और अधूरा महसूस करती है. "सुरंगे" सर्ग में जिस कारण उसकी यह मनोदशा हुई, वह रहस्य उजागर होता है. इसी सर्ग में हम देखते हैं कि पड़ाव की तरह पुरुष उसके जीवन में आते- जाते है पर "आकाश" सर्ग में रत्ती दिवाकर के सानिध्य में खुद को पूर्ण और श्राप से मुक्त पाती है . इस उपन्यास में हम देखते हैं कि सेक्स/काम/राग जो शरीर की बाकी इन्द्रियों की तरह ही सामान्य क्रिया है और परिस्थिति विशेष में जिसकी खुराक अनिवार्य रूप से जरुरी हो जाती है, रत्ती उससे जबरन भागने लगती है, शरीर की स्वाभाविक आवश्यकता को दबाने लगती है, वह स्त्री-पुरुष के इस प्राकृतिक संयोग से भय खाने लगी है, इस आदिम सम्बन्ध को

झुठलाने लगी है. वह सोचती है कि रातों में किसी के पास न सोकर भी जीना अच्छा है. पर मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण कहता है कि सेक्स की भावना को एक हद के बाद दबाना कई मामलो में घातक साबित होता है जिसका सम्बंध न सिर्फ भावनात्मक आवेगों के उच्छलन से है बल्कि हार्मोनल चेंज भी व्यवहार को निर्धारित करते हैं. समाज इसे कुछ भी कहे पर इसके पीछे नितांत जैविक कारण है. नैतिकता या आदर्श के जामें से इसे व्यवस्थित और मानकीकृत रूप दे सकते हैं पर दबा नहीं सकते, समाप्त नहीं कर सकतें हैं.

रत्ती अपने स्त्री निहित अंगो को छूती है और हर वक्त अपने अधूरेपन को महसूस करती है. लोगो की बाते खुद उसके अपने शब्द बन कर उसके कानो में घुलते हैं. वह मन में बार-बार दोहराती है कि; " रत्ती अच्छी लड़की नहीं, वह सिर्फ गीली लकड़ी है, रत्ती कोई औरत नहीं, जब भी जलेगी, धुआ देगी, सिर्फ धुंआ "

साभार गूगल रत्ती के लिए यह लड़ाई दोहरे छोर पर है, एक तो उसे उस घटना से लड़ना है दूसरा उसे लोगो द्वारा खुद को एक सीमा में निर्धारित कर लिए जाने से ऐसी स्थिति में व्यक्ति भीड़ में रहते हुए भी खुद को अकेला महसूस करने के लिए मजबूर हो जाता है. इससे आगे की मनोस्थिति यह होती है कि व्यक्ति को अकेलापन और अपना स्थाई दुःख ही अच्छा लगने लगता है रत्ती को भी ये अधूरापन अपना लगने लगा और वह इसमें आनंदित भी रहने लगी. वह फाटक पर पहुचना चाहती है पर अन्दर जाना नहीं. इस प्रकार की मनोग्रंथि में लिप्त व्यक्ति के लिए ऐसे साथी की बहुत जरुरत होती है जो उसे इस अवसाद से निकल सके और जीवन के सकारात्मक पक्ष से उसे जोड़ सके. उपन्यास के प्रारंभ में ही केशी और रीमा जो की पति-पत्नी है और रत्ती के दोस्त भी रत्ती के सन्दर्भ में ऐसी ही भूमिका का निर्वहन करते देखते हैं. केशी उसे समझता है. वह जानता है कि यह लड़ाई पुरुष के विरोध में नहीं बल्कि उसकी खुद से है. केशी उसे मानसिक रूप से सहारा देता है वह नहीं चाहता की रत्ती अपने अतीत में खोकर अपना वर्तमान और भविष्य खराब करे. वह उसे समझाता है कि, "हमेशा अपने से अपने अन्दर लड़ते रहने का कोई फायदा नहीं. लड़ाई को अपने से बाहर रखकर लड़ना हमेशा अच्छा रहता है."

रत्ती कई पुरुषों से होकर गुजरी पर हर बार उसके लिए वो सब मिटटी का ढेर हो गया. हर बार बीच में वही ढेर मिटटी हो गये वक्त का उपन्यास पढ़ कर पाठक को ये भ्रम हो सकता है की रत्ती को अपराधबोध हो या वह घटना के लिए स्वयं को दोषी मान रही हो पर ऐसा नहीं है. एक सुधि पाठक यह रचना पढ़ कर यह जान सकते हैं कि रत्ती में यह मनोग्रन्थि उसके साथ हुए उस अपराध के कारण नहीं थी बल्कि उसके आस-पास के लोगो द्वारा रचे गए और जजमेंटल हो जाने के कारण है खास कर उसके बचपन के सहपाठियों द्वारा उसे चिढाया जाना उसमे इस मनोग्रंथि का बीज डालता है और जीवन में आये पुरुष और उन पुरुषों की कभी हड़बड़ी तो कभी रत्ती को न समझ पाने के कारण इस मनोग्रंथि का बीज अंकुरित हो परिपक्व धारणा के रूप में उसके अन्दर घर कर लेता है.

दिलो दानिश :

उपन्यास का कथानयक एक सामन्ती हवेली और रईस समाज व्यवस्था से बावस्थ त्री कृपानारयण है ।

- प्रस्तुत उपन्यास की कथा में कुटुम्ब प्यारी जो कि कृपानारयण की विधिवत् पत्नी है और महक बानो अवैध पत्नी, परन्तु दोनों ही किसी न किसी रूप से पुरूष की सामाजिक सत्ता की शिकार बनी हैं । इस उपन्यास में जिन प्रशनो को उजागर किया गया है, वे आज भी हमारे समाज में सिर उठाये खड़े हैं । आज भी वे युगीन नारी के जीवन की समस्या बने हुए हैं | कृपानारायण पत्नी और रखैल में हमेशा अंतर पाते । दोनों के गुण या चरित्र में काफी अलगाव है, अत: अक्सर वे दोनों की तुलना करके स्वयं पर खुश होते हैं ।

कृष्णा सोबती के शब्दों में - " हर सड़क, पटरी या पगडंडी आखिर अपनी मंजिल पा घर तक पहुँचती है | पर वकील साहब कहाँ ? कभी कुटुम्ब के किनारे और कभी महक के । क्या समझाएँ जिस्म की राहत चाहिए होती है पर दिलो दिमाग भी कुछ मांगते हैं ।"

डार से बिछुडी :

कथा नायिका _पाशो (निष्कलंक ग्रामीण युवती)

कृष्णा सोबती जी ने अपनी इस कथाकृति में पात्र व्दारा स्त्री जीवन के समक्ष जन्म में ही मौजूद खातरों और उसकी विडंबनाओं को रेखांकित किया है, पाशी इस उपन्यास में धरती और संस्कृति, दोनों की प्रतिरूप है क्योंकि पाशी की माँ जो विधवा थी उन्होने अपनी जिंदगी में एक दूसरे पुरुष (शेख - भद्र सज्जन) के साथ विवाह किया, जिस कारण बच्चपन से ही पाशो को इसकी किमत चुकानी पड़ी, उसे हमेंश शक के नजर से देखा जाता था । दादी कहती- " इस मुँह उसका नाम न लूँ बिटिया, उस की करनी तुझे भरनी थी । तेरे दोनों मामू उसे कितना मानते थे, यह लोक जहान जानता है, पर नासहोनी तो घर भर का मुहँ काला कर गई ।" वही दूसरी ओर उसकी मामी उसे हमेश कुछ न कुछ सुनाती रहती जैसे "अरी नरकों में वास हो क तेरा और तुझे जन्मनेवाली का ! उस शोहदे से आँख लड़ाने चली ! जैसी कुलच्छनी माँ थी.... पाशो यह सह नहीं पाई और माँ के पास गाई, उसकी माँ जिन्दा उसके सिरहाने कोहनी टेके कई पल यह मुख विहारी रही । फिर बालों को छू गीली आवाज में बोली बच्ची इतनी बड़ी हो गई और मैं जानती तक न थी !

उसका भाई वीर उसे अपने पिता के कहे मुताबिक उसे उसके ससुराल ले गए वहा उसका विवाह लखपथ दिवान से कराई, जो उससे उमर में काफी बड़ा था, मौसी ने पशो को गोटे - जड़ा गुलाबी जोड़ा ले आई और ले आई ढेर - से गहने

- बाँहों के जड़ाऊ कडे, गोखरू मोती - जड़ी मुँदरियाँ, आरसी, नाक की शिकारपुरी नथ, कानों के पीपल - पत्ते, सिर के चौंक, फूल और मौली ! सज- सँवर पीढी पर बैठी तो पास खड़ी मौसी ने सिरवारना कर माथा चूम लिया, " मैं सदके जाऊँ! " विवाह के कुछ समय बाद वीर अपनी बहन और दिवनजी लें मिले तो दिवनजी ने कहा लाली शेख, तुम्हारी बहन सासरे में पल भर भी आराम नहीं पाती । मुँह अँधेरे उठती है तो निर्दयी सास दूजे पहर तक सोने नहीं देती । " कुछ दिन बड़े आन्नद के साथ जीवन निर्वाह गुना लेकिन उस पर भी काली गड़ा चाह गई दीवान की मौत के बाद उसका जीवन काले बादलों की तरह बन गई | पति की मृत्यु, बरकत देवर के हाथो इसका बलतकार और फिर एक बूढ़े लासानी के हाथों इसे बेच दिया इस कारण उसे न चाहकर भी उसे द्रोपदी का रूप दारन करना पड़ा, एक बार फिर तूफान आया जिसने पाशो का इन सब से दूर युध्द भूमी पर एक अनजान स्थान पर बेहाल रूप मे ला कड़ा किया उस बीच वह युशवन्तराय और उनकी मौसी के पास पहुँची होश में आई तो दीवट की लौ में कोई सयानी सिरहाना बैठी । सिर में तेल झसती थी । आँखें खोली, पानी माँगा और घबराकर पूछा मैं कहाँ हूँ... मैं कहाँ हूँ ? घबराकर फिर से पूछा यहाँ कैसे आई हूँ ? इस घर मुझे कौन लाया है? " जिस घर ने इसे पना दीया वह घर भी राख हो गया, फिर से अनजान उसे फिरंगी की कचहरी में देख घर ले आता है और वहा अपने परिवार को वापस पा आती है - " एक बार का थिरका पाण ज़िन्दगीनामा धूल में मिला देगा । " अन्त तह माँ और मौसी के पास अपने डार में जा मिली ।

रहा में जा पहुँची, इस बार उसका वीर लेती है साथ ही उसे नानी की बात याद वहा अपने भाई वीर के व्दारा अपने बेटे, यहा घटना सिक्ख और फिरंगी युध्द के समय की है । 21 फरवरी 1849 मैं पंजाब पूरण रूप से तहस नहस हो गया ।

तिन पहाड़ :

कथा नायिका : जया

जया के रूप में सोबती जी ने स्त्री के मानसिक दुर्बलता, उसकी विडंबना, आकांक्षा, सुख आदि विषयों पर प्रकाश डाला है । जया अपने हर पल को याद करते हुए उन लमों को एक बार फिर वापस पाने की इच्छा करते हुए अपने आप को रोज रही लेकिन वही दूसरी तरफ वह दीरें दिरें मोहभरी अलसाई हुए आँखों के समान डुड कर बिकर रही हैं । जया तपन को चाहने । लगती हैं पर उसे अन्त तक नहीं कह पाती । उदाहण के लिए "किसी दिन किसी दूसरे पर मन हो आने से....आश्वासन से उट मा का कन्धा छू लिया और उलाहना दे कहा, " बेटे को इतना ही जानती हो,। "

निष्कर्ष :

इस संस्कृति में ज़रूर एसा कुछ रहा होगा, जिसके आधार पर या जिसकी आड़ में मनुष्य जन्म ले सका और फलता फूलता रहा | यह सवाल पूछा जाना चाहिए कि वेदों की उदारता और और मानव मुक्ति की कामना से अभिभूत होकर हम स्त्रियों को क्या लाभ होगा? यही कारण है की आज बार बार जिस संस्कृति और परम्परा की दुहाई दी जा रही है वह अभी सत्ता के संदर्भ में पुरानी ब्राह्मण संस्कृति ही है। जिसने लिपियों और दोस्तों का शोषण किया है | अपने एतिहासिक उधेश्य में ही लोग अब भी चाहते मैं कि संस्थाओं में उनका वर्चस्व बना रहे । इसी कारण बार बार उनके लेकन में नवोपनिशवाद अभिव्यक्त होता है | नारीवाद विचारधारा को इससे कोई लाभ नहीं होने वाला यहाँ राष्ट्रीय का विरोध नहीं किया गया है | अपने से भिन्न का दृष्टिकोण पेश करने का विरोध करने वाली स्रवसत्तावादी की अलोचाना की जा रही है ।

संदर्भ

रेखा कस्तवार, स्त्री चिंतन की चुनौतिया ं, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, सन् 2006, पृ. 188.
रवीन्द्र वर्मा, 'ताकत का खेल' (लेख) उद्धृत, स्त्री के लिए जगह, (सं.) राजकिशोर, वाणी प्रकाशन, सन् 1994, पृ. 111-112.
प्रभा खेतान, छिन्नमस्ता, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, सन् 2004, द्वितीय सस्करण, पृ. 222.
उषा प्रियंवदा, अंतर्वंशी, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, सन् 2004, पृ. 237.
प्रभा खेतान, उपनिवेश में स्त्री, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, सन् 2003, पृ. 145.
अरुण प्रकाश, 'स्त्री, मन और देह' (लेख) उद्धृत, स्त्री: मुक्ति का सपना, (सं.) प्रो. कमला प्रसाद, वाणी प्रकाशन, सन् 2004, पृ. 66.
श्री लाल शुक्ल, (लेख) उद्धृत स्त्री: मुक्ति का सपना, (सं.) प्रो. कमला प्रसाद, पृ. 519-520.
रेखा कस्तवार, 'अकेली स्त्री' (लेख) उद्धृत, स्त्री: मुक्ति का सपना, (स ं.) प्रो. कमला प्रसाद, पृ. 113.
प्रसाद, प्रो. कमला; शर्मा, राजेंद्र, (संपा) स्त्री: मुक्ति का सपना, वाणी प्रकाशन, नईदिल्ली, द्वितीय आवृत्ति-2009, पृष्ट. सं. 19
पुष्पा, मैत्रेयी, सुनो मालिक सुनो, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2006, पृष्ट. सं. 34
चतुर्वेदी, जगदीश्वर, स्त्रीवादी साहित्य, अनामिका पब्लिसर एंड दृष्टिव्यूटर, दरियागंज, नई दिल्ली, 2011, पृष्ट. सं. 02
चतुर्वेदी, जगदीश्वर, स्त्रीवादी साहित्य, अनामिका पब्लिसर एंड दृष्टिव्यूटर, दरियागंज, नई दिल्ली, 2011, पृष्ट. सं. 03